



मैं हिन्दी बोल रही हूँ...

यदि राष्ट्र को सशक्त बनाना है, तो मुझे तहे दिल से अपना ही होगा। सुनना पड़ेगा तुम्हें ... मैं हिन्दी बोल रही हूँ...! मैं आज उस बाज़ार में ठिठकी हुई-सी खड़ी हूँ, जहाँ कहने को सब अपने हैं, लेकिन फिर भी बेगाने से हैं ... शायद। मेरे ही देश में भारत माँ की इस बेटि को सौतेला बना दिया गया है। मेरे दर्द को समझो, मैं झूठे आश्वासनों से अब उकता गई हूँ। मुझे उचित सम्मान दो या फिर मुझे ...इच्छा मृत्यु दे दो!

मैं, हिन्दी बोल रही हूँ ...

मेरी माँ का नाम आप अच्छी तरह से जानते हैं, उनका नाम 'संस्कृत' है। वह बहुत सुन्दर है, परन्तु उसका स्वरूप क्लिष्ट है और उसका यही स्वरूप उसके प्रचार-प्रसार में बाधक बन रहा था। सातवीं शताब्दी (ई.पू.) से दसवीं शताब्दी (ई.पू.) के बीच पाली व प्राकृत जैसी उनकी बहनों का व्यापक प्रसार हो रहा था और बौद्ध धर्म पूर्णतः परिपक्व हो चुका था। मेरी माँ ने सभ्यताओं के हज़ारों सावन और पतझड़ देखे हैं। ठीक उसी तरह मैं 'हिन्दी' भी उस शिशु के समान हूँ, जिसने अपनी माता के गर्भ में ही हर तरह के मौसम देखने शुरू कर दिये थे। अतः उसने अरबी, फारसी जैसी विदेशी और पाली, प्राकृत जैसी देशी बहनों के गुण देखे। इसी काल में ही मुझे अपनी छोटी बहन 'उर्दू' मिली, जो अरबी, फारसी व हिन्दी के मिश्रण से अस्तित्व में आई थी। इनके सम्बंधों ने मुझे नाम दिया - 'खड़ी हिन्दी'। अमीर खुसरो मुझे बेहद पसंद करते थे। उन्होंने ही सन 1283 में खड़ी हिन्दी नामक इस शिशु का नामकरण 'हिन्दवी' किया। जिस शिशु को इतनी सारी भाषाएँ अपने प्रेम से सींचें, उसके गठन की मजबूती का अंदाज़ा आप स्वयं लगा सकते हैं।

तो मैं हिन्दी बोल रही हूँ ...! मेरा जन्म एक भाषा का जन्म न होकर भारत के मध्यकालीन इतिहास का प्रारम्भ भी है, जिसमें भारतीय संस्कृति के साथ अरबी व फारसी संस्कृतियों का अद्भुत संगम नज़र आता है। तुर्कों और मुगलों के प्रभाव में पल्लवित होती इस हिन्दी को उनकी नफासत विरासत में मिली, वहीं दूसरी ओर इस समय भक्ति आंदोलन भी काफी क्रियाशील हो चुका था, जिसने कबीर (1398-1518 ई.) रामानंद (1450 ई.), बनारसी दास (1601 ई.), तुलसीदास (1532-1623 ई.) जैसे प्रकांड विद्वानों को जन्म दिया। इन्होंने मेरे नये रूप में खड़ी और आधुनिक हिन्दी के अलंकारों से सुसज्जित कर मेरा शृंगार किया। अब मैं अपने रूप-यौवन पर इतरा रही थी। अंग्रेज़ी शासन तक मैं एक अल्हड़ किशोरी से शांत व गम्भीर युवती के रूप में परिवर्तित हो चुकी थी। अंग्रेज़ियत के समावेश ने मुझको तत्कालीन परिवेश में एक नया परिधान दिया। अब मैं मॉडर्न बन गई थी और 'आधुनिक हिन्दी' कहलाने लगी

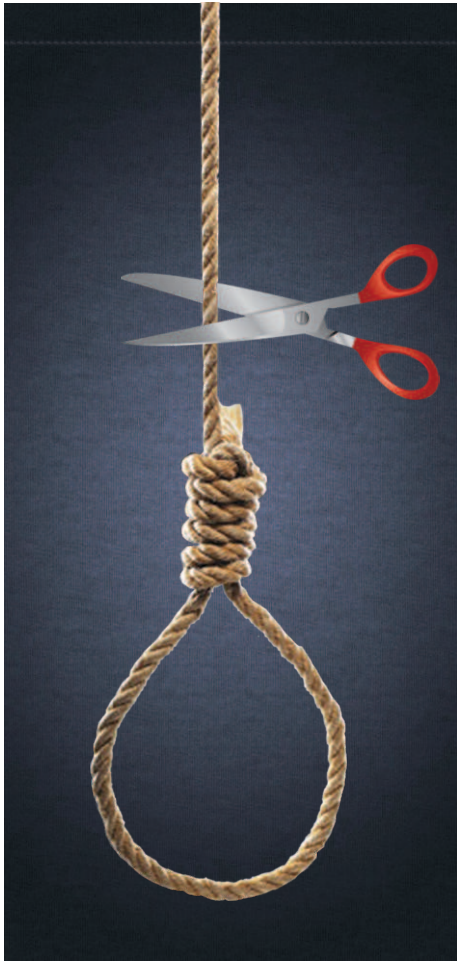
थी। मुझ पर किये जाने वाले तरह-तरह के प्रयोग इस दौर में अपने शीर्ष पर थे। मैं सदैव से ही सहनशील रही हूँ। मेरा अपभ्रंश होता रहा। मेरे साथे मैं कई प्रादेशिक और आंचलिक भाषाएँ अपना घर बसाती रही। मैं इस बात से बेखबर थी कि एक दिन मेरी यही सहनशीलता मेरे वजूद पर प्रश्नचिह्न लगा देगी। फिर आज़ादी के संघर्ष का दौर आया। मैं उस दौर की गवाह रही हूँ। उस दौर में किताबों, उपन्यासों, ग्रंथों, काव्यों के साथ-साथ मैं राजनीतिक चेतना का माध्यम बन गई। मैं उनके विरोध और स्वतंत्र भारत के स्वप्न का भी प्रभावी माध्यम रही। तमाम हिन्दी समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं ने देश के बुद्धिजीवियों में स्वतंत्रता की ललक जगाई। स्वतंत्र भारत के कर्णधारों ने जो स्वतंत्रता का स्वप्न देखा उसमें स्वतंत्र भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में हमेशा मुझ हिन्दी को ही देखा। यह सोचकर खुश हो रही थी कि मेरे देश की आज़ादी के बाद मैं सबकी चहेती हो जाऊँगी। जब मेरा देश स्वतंत्र हुआ था, तब मैंने सोचा था कि हमारे आज़ाद देश में मैं हर नागरिक की जुबान पर होऊँगी। आम बोलचाल की भाषा व समस्त कार्यालयों के व्यवहार की भाषा बनूँगी। अपनी भाषा, अपनी संस्कृति होगी तो कितना अपनापन होगा ? सोच-सोच कर खुश होती रहती थी। परन्तु अफसोस मेरे ही देश में ही मेरे खिलाफ विरोध के स्वर सुनाई देने लगे। उस वक़्त मैं बहुत आहत हुई, जब कुछ राजनैतिक मौका परस्तों ने उनके सुर में सुर मिलाने प्रारम्भ कर दिये। स्वतंत्रता के 65 वर्ष पश्चात भी मैं अपना वजूद तलाश रही हूँ। अंग्रेज़ों से तो हम स्वतंत्र हो गये, पर विदेशी बहन अंग्रेज़ी से अभी भी मेरे भारतवासियों का मोह समाप्त नहीं हो पाया है। मेरे ही कुछ लोग मुझ पर यह आरोप लगाते हैं कि मैं यह चाहती हूँ कि अंग्रेज़ी समाप्त हो जाये। वे नहीं जानते कि देश की तरह मैं भी विशाल हृदय हूँ। मैंने सब को अपनाया है। हाँ, मैंने 'अंग्रेज़ी हटाओ कहा' मगर यह कभी नहीं कहा कि 'अंग्रेज़ी मिटाओ'। मेरा यह तात्पर्य कदापि नहीं रहा कि अंग्रेज़ी को पूरी तरह खत्म कर दिया जाये। मैं चाहती हूँ कि अन्य भाषाओं को सम्मान मिले, पर मुझे भी राष्ट्रभाषा के रूप में उचित सम्मान व स्थान मिले, जिसकी मैं वास्तव में हकदार हूँ। वर्तमान में मैं विश्व की सबसे अधिक प्रयोग में आने

वाली भाषाओं में दूसरा स्थान रखती हूँ। हो सकता है कि अंग्रेज़ी का प्रभाव हिन्दी पर अधिक नज़र आता हो, मगर मैंने अपने भीतर इतनी भाषाओं और बोलियों को समेटकर अपनी गम्भीरता का ही परिचय दिया है। मेरी आत्मा अभी मरी नहीं है। मुझसे प्रेम करने वाले, मेरी जुबान बोलने और समझने वालों की संख्या में इज़ाफा हो रहा है। सरकारी व गैर-सरकारी कार्यालयों में काफी कार्य हिन्दी में हो रहा है। आज मुझको सम्मान दिलाने के लिए सामूहिक प्रयास किये जा रहे हैं। सरकारें पूरी कर्मठता से जुट गई हैं। बंजर हो रही ज़मीन को उर्वरा बनाने का रचनात्मक जोश साफ झलक रहा है, परन्तु यह पर्याप्त नहीं है। आयोजित किये जाने वाले हिन्दी-पखवाड़े, हिन्दी-गोष्ठियाँ और रंगारंग कार्यक्रम वास्तव में मेरे ज़रखों को हरा कर जाते हैं। जब तक भारत के प्रत्येक नागरिक के दिल में मेरे लिए सम्मान नहीं होगा, मेरे चेहरे पर आप खुशी नहीं देख पायेंगे। अंततः एक आवाज़ ध्यान से सुनो। बहुत बार बोल चुकी हूँ, पर सम्भवतः यह मैं अंतिम बार बोलूँगी - राष्ट्रभाषा सम्पूर्ण देश में भावात्मक तथा सांस्कृतिक एकता स्थापित करने का प्रधान साधन होती है। यह स्वतंत्र तथा समृद्ध राष्ट्र के लिए आवश्यक है। इसलिए प्रत्येक विकसित तथा स्वाभिमानी देश की अपनी एक भाषा होती है, जिसे राष्ट्रभाषा का गौरव प्राप्त होता है। यदि राष्ट्र को सशक्त बनाना है, तो मुझे तहे दिल से अपना ही होगा। सुनना पड़ेगा तुम्हें ... मैं हिन्दी बोल रही हूँ...! मैं आज उस बाज़ार में ठिठकी हुई-सी खड़ी हूँ, जहाँ कहने को सब अपने हैं, लेकिन फिर भी बेगाने से हैं ... शायद। मेरे ही देश में भारत माँ की इस बेटि को सौतेला बना दिया गया है। मेरे दर्द को समझो। मैं झूठे आश्वासनों से अब उकता गई हूँ। मुझे उचित सम्मान दो या फिर मुझे ...इच्छा मृत्यु दे दो !

सनद रहे-भाषा का मरना सिर्फ अक्षरों की मौत नहीं होती। उसकी मौत से समूची अभिव्यक्ति, पूरी रवायत, पूरी संस्कृति, पूरी सभ्यता, यहाँ तक कि देश भी अपाहिज हो जाता है।

गिरिश कुमार यादव,

कार्यालय अधीक्षक, मुंबई रेलवे विकास कॉर्पोरेशन, चर्चगेट, मुंबई



सुसाइड : रोक-थाम के ज़रूरी उपाय

‘एक्सीडेन्ट डेथ एण्ड सुसाइड इन इंडिया-2011’ रिपोर्ट के अनुसार भारत में हर चार मिनट में एक आत्महत्या की घटना होती है और आत्महत्या करने वालों में प्रत्येक पाँचवाँ व्यक्ति गृहिणी होती है। रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2010 (1,34,599) की तुलना में वर्ष 2011 (1,35,585) में लगभग एक हजार अधिक व्यक्तियों ने सुसाइड को अंजाम दिया।

वर्तमान समय में, खासकर मुंबई जैसे बड़े शहरों में, सुसाइड एक गम्भीर समस्या बन चुकी है। परन्तु दुर्भाग्य यह है कि आज भी हमारे यहाँ इस समस्या का कोई ठोस एवं सटीक समाधान उपलब्ध नहीं है। परिणामतः लाखों लोग, खासकर किशोर वय एवं युवा सुसाइड का रास्ता अख्तियार कर अपना जीवन समाप्त कर रहे हैं। ‘एक्सीडेन्ट डेथ एण्ड सुसाइड इन इंडिया-2011’ रिपोर्ट के अनुसार भारत में हर चार मिनट में एक आत्महत्या की घटना होती है और आत्महत्या करने वालों में प्रत्येक पाँचवाँ व्यक्ति गृहिणी होती है। रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2010 (1,34,599) की तुलना में वर्ष 2011 (1,35,585) में लगभग एक हजार अधिक व्यक्तियों ने सुसाइड को अंजाम दिया। सबसे ज्यादा सुसाइड की घटनाएँ पश्चिम बंगाल (16,992), तमिलनाडू (15,963), महाराष्ट्र (15,947) और आंध्रप्रदेश (15,077) में घटित हुईं। देश के प्रमुख शहरों में चेन्नई में 2438, बेंगलुरु में 1717, दिल्ली में 1382 और मुंबई में 1162 सुसाइड की घटनाएँ रिकॉर्ड की गयीं। हमारे देश में लोग ज़हर के माध्यम से 36.6 प्रतिशत, फाँसी के द्वारा 32.1 प्रतिशत एवं स्व-हत्या के द्वारा 7.9 प्रतिशत लोग सुसाइड को अंजाम देते हैं। उपलब्ध आँकड़ों से यह पता चलता है कि अनेक आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद उत्तर भारत में दक्षिण भारत की अपेक्षा सुसाइड की दर कम पायी गयी है। वस्तुतः सुसाइड एक तरह का डेलिब्रेट हार्म है। यह जान-बूझ कर एवं सेल्फ

इन्फ्लिकटेड मृत्यु है, जो आई. पी. सी. की धारा 309 के अंतर्गत दंडनीय अपराध भी है। भारत में सुसाइड मृत्यु के टॉप टेन कारणों में शामिल है। विश्व में सुसाइड की दर औसतन 10.07 प्रति लाख अनुमानित है। ‘सुसाइड’ एवं ‘सुसाइड प्रयास’ का अनुपात 01:10 है। सुसाइड का प्रयास महिलाएँ अधिक करती हैं, पर महिलाओं की तुलना में पुरुष 2 से 4 गुना अधिक सुसाइड करता है। पुरुषों का सुसाइड करने का तरीका भी ज्यादा भयावह होता है। सुसाइड के प्रयास करने वाले 2 से 10 प्रतिशत लोग प्रयास के अगले 20 सालों में सुसाइड कर लेते हैं। 18 से 30 वर्ष की आयु वर्ग वाले लोग अधिक सुसाइड करते हैं। ● **सुसाइड के कारण:** सुसाइड के अनेक कारण हैं, जिन्हे मानसिक एवं मनोसामाजिक कारणों के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। डिप्रेशन एवं सैजोफ्रेनिया आदि जैसी मानसिक बीमारियों से पीड़ित व्यक्ति अन्ततः सुसाइड कर ही लेता है, वहीं परीक्षा, प्यार और व्यवसाय में हानि अथवा असफलता, आर्थिक एवं वित्तीय हानि, देहज की समस्या, पारिवारिक या वैवाहिक जीवन में कलह, दुराव एवं अलगाव का होना, तलाक की समस्या, प्रियजन की मृत्यु, किसी कारण सामाजिक प्रतिष्ठा खोना, कैद, मुकदमा आदि सुसाइड के मनोसामाजिक कारण होते हैं। ● **हाई रिस्क व्यक्ति:** ऐसा व्यक्ति जिसकी उम्र 40 साल से अधिक हो, अकेला हो, तलाक शुदा हो, सुसाइडल इतिहास वाला हो, डिप्रेशन से पीड़ित हो, जिसमें दोष एवं अपराध का भाव अधिक हो, निराशा, नीरसता, विभ्रम एवं गम्भीर अनिद्रा से पीड़ित हो और जिसके मन में सुसाइडल आइडिया एवं प्लान की उपस्थिति हो, उसे हाई रिस्क व्यक्ति माना जाता है। इसके अलावा गम्भीर शारीरिक रोग, मसलन-कैंसर, एड्स एवं कोढ़ आदि से पीड़ित भी हाई रिस्क व्यक्ति माना जाता है। ● **सुसाइड के सम्बंध में धारणाएँ एवं तथ्य :** सुसाइड के सम्बंध में प्रायः यह

आम धारणा होती है कि सुसाइड की धमकी देने वाला व्यक्ति सुसाइड नहीं करता है, परन्तु तथ्य यह है कि सुसाइड करने वाले 80 प्रतिशत लोग पहले धमकी देने वाले होते हैं। ★ सुसाइड के सम्बंध में यह भी सामान्य धारणा होती है कि ऐसा व्यक्ति मरने के लिए पूरी तरह से तैयार होता है, पर वास्तविकता यह है कि सुसाइड करने वाले लोग अंत तक अनिर्णय की अवस्था में होते हैं। ★ एक धारणा यह भी है कि सुसाइडल व्यक्ति मानसिक तौर पर बीमार होता है। हकीकत में यह कोई ज़रूरी नहीं है कि ऐसा व्यक्ति मानसिक रोगी ही हो। हाँ, यह सच है कि वह वर्तमान परिस्थिति से काफी नाखुश होता है।

● **सुसाइड रोकने के उपाय:** सुसाइड की घटनाओं को रोकने के लिए कई आवश्यक कदम उठाने होते हैं। ★ **सुसाइडल अंत :** क्षमता का निर्धारण एवं पूर्वानुमान करने के लिए सुसाइडल व्यक्ति की धमकियों, डायरियों, टिप्पणियों, पत्रों आदि सहित क्लिनिक मनोवैज्ञानिक, मनोचिकित्सक या सुसाइड प्रीवेंशन सेंटर के विशेषज्ञों से सम्पर्क करें, ताकि विशेषज्ञ मूल समस्या का निर्धारण एवं स्पष्टीकरण कर सकें। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों एवं साक्षात्कार के माध्यम से विशेषज्ञ सुसाइड के मूल कारणों एवं उसके व्यक्तित्व के शील-गुणों को जाना जा सके। साथ ही सुसाइड की सम्भावनाओं का निर्धारण कर उचित काउंसलिंग, निर्देशन एवं साइकोथेरेपी प्रदान की जा सके। समाज में सुसाइड की घटनाएँ रोकने हेतु पुरोहितों, नर्सों, शिक्षकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं एवं अन्य पेशेवर लोग मसलन-नाई, धोबी एवं दूधवाले आदि जो समुदाय के साथ ज्यादा सम्पर्क में रहते हैं, को समुचित ढंग से प्रशिक्षित किया जाना ज़रूरी है।

डा. श्याम किशोर प्रसाद,

वैज्ञानिक सहायक (मनोवैज्ञानिक),

परिचालन विभाग, पश्चिम रेलवे, चर्चगेट



फादर्स डे

दुनिया में बिना माँ-बाप के बच्चे सामाजिक रूप से असुरक्षित व तिरस्कृत महसूस करते हैं, वहीं जिनके माँ-बाप जीवित हों, उनके बच्चे सामाजिक रूप से सुरक्षित व गौरवान्वित महसूस करते हैं। जिस समाज में पितृत्व व मातृत्व भाव समृद्ध होता है, उस समाज में माँ-बाप न रहते हुए भी बच्चे अपने को अनाथ महसूस नहीं करते हैं और उस समाज के लोग खुद को बहुत भाग्यशाली व सुखी महसूस करते हैं।

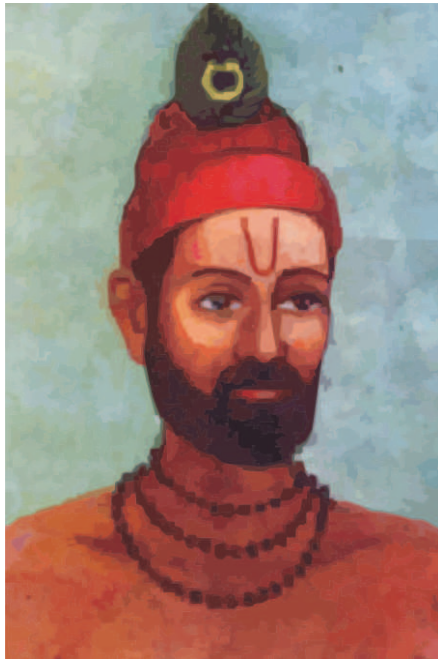
विश्व के प्रत्येक जीव-जगत में माता-पिता के बिना किसी भी जीव की उत्पत्ति सम्भव नहीं है और ना ही सृष्टि की कल्पना। जब जीव-जगत की उत्पत्ति ही माता-पिता के द्वारा होती है, तो उस जीव के लिए उसके माता-पिता से बढ़कर, उसके जीवन में और कुछ हो ही नहीं सकता। जिस प्रकार बच्चे के लिए माता-पिता सर्वोपरि हैं, उसी प्रकार बच्चे के प्रति माता-पिता का उत्तरदायित्व भी सर्वोपरि होना चाहिये, अर्थात् दुनिया में उसे अच्छी ज़िंदगी देने के लिए हर तरह से परिपक्वता लाने की अपरिहार्य रूप से ज़िम्मेदारी भी होनी चाहिये। मानव जीव-जगत में सबसे अधिक बुद्धिजीवी माना जाता है, अतः उसकी जवाबदारी भी अन्य जीवों की तुलना में और अधिक बढ़ जाती है। मानव-जीवन में पिता की भूमिका, बच्चों के भविष्य निर्माण के प्रति ठीक वैसी ही होनी चाहिये, जैसे कुम्हार अपने घड़े को सुन्दर आकार देने के लिए एक हाथ से बाहर से चोट पहुँचाता है तथा दूसरे हाथ से अन्दर से सपोर्ट भी करता है, ताकि उसे सही आकार तथा सुन्दर व आकर्षक स्वरूप दिया जा सके और समाज में उसे प्रतिष्ठा व यश प्राप्त हो सके। देखा जाये तो पिता एक जनक, पालक, रक्षक, दोस्त, गुरु और माना जाये तो भगवान भी होता है, क्योंकि पिता हमें हर तरह से समृद्ध बनाने में अहम भूमिका निभाता है। इसीलिए हम पिता के सदा ऋणी रहते हैं। मेरे विचार से, हम पितृ ऋण से तभी मुक्त हो सकते हैं, जब हम उनको उचित सम्मान देते हुए, अपनी संतान को विकास हेतु उचित माहौल दें और उनके शिक्षण, रक्षण व भरण-पोषण

के साथ-साथ उन्हें दुनिया में एक समर्थ नागरिक का दर्जा दिलायें। पिता को प्रजापति अर्थात् ब्रह्मा का स्वरूप माना जाता है, क्योंकि ब्रह्मा अपनी प्रजा की सुरक्षा एवं भरण-पोषण की ज़िम्मेदारी का निर्वहन करते हैं। उसी प्रकार पिता भी अपने पूरे परिवार की सुरक्षा व भरण-पोषण की नैतिक ज़िम्मेदारी का निर्वहन करते हैं। जहाँ माँ दुनिया की बुरी नज़रों व दुष्प्रभावों से बचाने के लिए अपनी गोद में अपने बच्चे को आँचल से ढककर छिपाती है, वहीं पिता विशाल वट वृक्ष की तरह उन पर ढाल बनकर, उनकी सुरक्षा के साथ-साथ छाया व शीतलता प्रदान करता है।

दुनिया में बिना माँ-बाप के बच्चे सामाजिक रूप से असुरक्षित व तिरस्कृत महसूस करते हैं, वहीं जिनके माँ-बाप जीवित हों, उनके बच्चे सामाजिक रूप से सुरक्षित व गौरवान्वित महसूस करते हैं। जिस समाज में पितृत्व व मातृत्व भाव समृद्ध होता है, उस समाज में माँ-बाप न रहते हुए भी बच्चे अपने को अनाथ महसूस नहीं करते हैं और उस समाज के लोग खुद को बहुत भाग्यशाली व सुखी महसूस करते हैं। यहाँ इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि आज इस दुनिया में असुरक्षा की भावना इसलिए बलवती हो गयी है कि दुनिया में इस समय पितृत्व व मातृत्व भाव अलग-थलग पड़कर कमजोर हो गया है, जिससे माँ, भाई-बहन व बेटियों की अस्मत् व अस्तित्व दोनों खतरे में पड़ गये हैं। यदि हमें दुनिया में सुरक्षित रहना है, तो पितृत्व व मातृत्व भाव को समृद्ध करना पड़ेगा, ताकि हम दुनिया में निर्भीक रहते हुए अपने जीवन में चहुँमुखी विकास की ओर कदम रख सकें एवं एक आदर्श समाज की स्थापना कर सकें। यदि हम ये सोचते हैं कि पिता रूपी विशाल वट वृक्ष की डालियों व पत्तों में, वो हरियाली, छाया व शीतलता प्रदान करने की क्षमता अब नहीं रह गयी है या माँ में वो ममता नहीं रह

गयी है, जो पहले थी, तो उन्हें अपने पास रखने से क्या फायदा ? उन्हें काटकर अपने से दूर कर देने में ही भलाई है, ताकि हम स्वतंत्र रूप से अपनी ज़िंदगी का आनंद ले सकें, तो ये हमारी बहुत बड़ी भूल है क्यों कि भले ही उम्र के अंतिम पड़ाव में एक विशाल वट वृक्ष की डालियाँ सूख गयी हों एवं उनकी पत्तियाँ झड़ गयी हों या माँ में पहले जैसी ममता न रह गयी हो, फिर भी उनके पास में रहने से माँ में ममता की भावना ज़रूर रहेगी तथा पिता रूपी विशाल वट वृक्ष कठोर व मजबूत ढाल बनकर हमारी रक्षा ज़रूर करेगा। अतः हमें माँ व पिता को 'यूज एण्ड थ्रो' वाली तर्ज पर नहीं आँकना चाहिये, क्योंकि वे हमें उस समय सहारा देते हैं, जब हम इस अजनबी दुनिया में स्वतंत्र रूप चलने में सक्षम नहीं होते हैं। अतः हमारी नैतिक ज़िम्मेदारी बनती है कि उनके उम्र के अंतिम पड़ाव में जब वे जीवन निर्वहन में अक्षम होते हैं, तो उन्हें अपने साथ रखकर उन्हें सहारा दें, न कि उन्हें ऐसे हालात में कष्ट सहने के लिए दुनिया की भीड़ में अकेले छोड़ दें। नये ज़माने में हर तरह का 'डे' मनाने का जो फैशनेबल दौर चल पड़ा है, उसकी सार्थकता तभी होगी जब हम अपने रिश्तों का सही मोल समझें और उन्हें पूरी ईमानदारी से निभायें। किसी भी दिन विशेष पर सम्बंधित व्यक्ति को शुभकामनाएँ दे देना काफी नहीं है, बल्कि हमें उस व्यक्ति के महत्त्व को समझ कर उसे पर्याप्त सम्मान देना सीखना चाहिये। अन्त में 'फादर्स डे' के इस विशेष लेख में अपने इस आह्वान के साथ अपनी बात समाप्त करना चाहूँगा कि- 'ऐ दुनिया के लोगों, माता-पिता के महत्त्व को समझो। उन्हें उम्र के अंतिम पड़ाव में अपने से अलग मत करो अन्यथा हमें सुरक्षा और ममता देने वाला कोई नहीं बचेगा..., कोई नहीं बचेगा...कोई नहीं बचेगा...!

रजनीश प्रजापति, लोको पालयट, बामी, मुंबई



चलती चक्की देखकर दिया कबीरा रोय

जिस प्रकार चक्की की कील के पास कुछ दाने साबुत ही रहते हैं। वे पिस नहीं पाते हैं। उसी प्रकार जो सद्गुरु से प्रेम करेगा और उसके बताये मार्ग पर चलेगा, वह सद्गुरु रूपी कील से चिपका रहेगा और संसार रूपी चक्की में पिसने से बच जायेगा।

बात मुगलकाल की है, बलख बुखारे (अफगानिस्तान) का बादशाह सिकन्दर बड़ा क्रूर अत्याचारी था। हिन्दुओं के साधु-संतों को ढोंगी और पाखण्डी समझता था। जो भी साधु उसके राज्य की सीमा में दिखाई देता, उसे जेल में डाल देता था। उनसे चक्की पिसवाया करता था। इस प्रकार से उसकी जेल साधु-संतों से भरी पड़ी थी, जिनको न तो भजन करने देता, न पूजा पाठ, बस चक्की ही पिसवाया करता था। इस तरह के अत्याचार देखकर सद्गुरु कबीर साहेब को ध्यान आया कि अगर बादशाह इसी प्रकार जुल्म करता रहा, तो उसका ईश्वर से भरोसा ही उठ जायेगा, जिसको बरकरार रखने के लिए संत कबीर को उस राजा की सीमा में जाना पड़ा। सफेद वस्त्रों में कबीर साहेब को देखकर उस राजा के सिपाहियों ने उन्हें पकड़ लिया और ढोंगी-पाखण्डी बताकर उन्हें भी चक्की चलाने को कहा। जेल में कबीर साहेब भी चक्की चलाने लगे। जब राजा के सिपाही वहाँ से चले गये, तो कबीर जी ने अन्य साधुओं से कहा कि आप लोग भजन क्यों नहीं करते हैं ? तो सभी साधु बोले-‘महाराज हमें चक्की चलाने से ही फुरसत नहीं मिलती, तो भजन कब करें ?’ इस बात को सुनकर कबीर साहेब ने संतों से कहा कि आप लोग केवल चक्की ही चलायें, गल्ला नहीं डालें

गल्ला डालने के लिए अलग से आदमी मांगें। संतों ने यह बात सिपाहियों से कही कि हमें गल्ला डालने के लिए एक-एक आदमी अलग से चाहिये। हम दो काम एक साथ नहीं कर सकते। राजा के सिपाहियों ने यह बात राजा तक पहुँचा दी। राजा यह बात सुनकर बहुत खुश हुआ और कहा कि यह तो और अच्छी बात है। इससे तो आटा और ज्यादा पिसेगा और राज्य की जनता खायेगी। इस प्रकार राजा ने एक-एक साधु को गल्ला डालने के लिए एक-एक आदमी दे दिया। जब साधु चक्की चलाने लगे, तो कबीर साहेब ने सभी संतों को आदेश दिया कि सभी साधु भजन करने बैठ जायें। उनके आदेश से सभी साधु भजन की मुद्रा में बैठकर भजन करने लगे और चक्कियाँ अपने आप स्वतः चलने लगीं। गल्ला डालने वाले व्यक्ति, गल्ला डालते रहे। यह दृश्य देखकर सिपाहियों ने यह बात बादशाह तक पहुँचा दी, तो बादशाह स्वयं जेल में चलकर आया और देखकर आश्चर्यचकित हुआ। सिपाहियों ने बताया कि कल से यह सफेद वस्त्रों वाला साधु आया है। इसी ने सभी से गल्ला डालने के लिए अलग से एक-एक आदमी की मांग करवाई और साधुओं को भजन करने के लिए भी इसी ने आदेश दिया है। यह देखकर राजा ने सफेद वस्त्रों वाले साधु को बुलाकर पूछा कि आप कहाँ से आये हैं ? तो सद्गुरु कबीर ने

अपना परिचय दिया। उसके बाद राजा ने कबीर साहेब से माफी मांगी तथा सभी कैद संतों को जेल से सम्मान सहित रिहा कर दिया। उसके पश्चात राजा ने साधु संतों पर विश्वास करना आरम्भ कर दिया और सभी को ढोंगी और पाखण्डी मानना बंद कर दिया। तभी से सद्गुरु कबीर साहेब का दूसरा नाम ‘बंदी छोड़’ पड़ गया, क्योंकि उन्होंने जेल में बंद साधु-संतों को छुड़वा दिया। वहीं से ही यह दोहा चरितार्थ हुआ:-

**चलती चक्की देखकर दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय।।**

अर्थात् इस संसार रूपी चक्की में सभी पिस जायेंगे। जिस प्रकार चक्की की कील के पास कुछ दाने साबुत ही रहते हैं और पिस नहीं पाते। उसी प्रकार जो सद्गुरु से प्रेम करेगा और उसके बताये मार्ग पर चलेगा, वह सद्गुरु रूपी कील से चिपका रहेगा और संसार रूपी चक्की में पिसने से बच जायेगा। जो गुरु की भक्ति नहीं करेगा वह संसार रूपी चक्की में पिस जायेगा और मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकेगा। अतः सभी मनुष्यों को गुरु की भक्ति करनी चाहिए और उनके बताये मार्ग पर चलकर मानव जीवन को भवसागर से पार करना चाहिये।

सीताराम,

लेखा सहायक, इतर यातायात लेखा कार्यालय, पश्चिम रेलवे, दिल्ली

3					5		
		9	6	8			
	1			4			7
	6		2				
	7	5			1	3	
				9		4	
2				3			8
			1	7	9		
		4					6

सूडोकू

कैसे खेलें:-

- प्रत्येक पंक्ति में 1 से 9 तक अंक भरे जाने आवश्यक हैं। इनका क्रमवार होना आवश्यक नहीं है।
- आड़ी और खड़ी पंक्ति में एवं 3X3 के वर्ग में किसी भी अंक की पुनरावृत्ति न हो इसका विशेष ध्यान रखें।
- पहले से मौजूद अंकों को आप हटा नहीं सकते।
- पहेली का केवल एक ही हल है।

		3				7	
	2		4		6		8
1				5			9
	9					1	
		8		4		2	
	7					9	
6				2			8
	5		3		1	7	
		4				6	